

श्रीमद्भागवत गीता में योग का स्वरूप

सारांश

आज मानव जाति शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्याधियों से ग्रस्त है। शरीर अनेक प्रयत्न करने के बाद भी स्वस्थ नहीं रहता है। मन शांत नहीं रहता है। क्योंकि तन में शक्ति नहीं और आत्मा में प्रभु चरणों की अनुरक्ति नहीं होती है। हम नाना प्रकार के विषयों में भटकते हुये विषय भोग की कामना के लिए कंचन और कामिनी की तलाश में इस अमूल्य जीवन को यू ही नष्ट कर दे रहे है। शास्त्र कहता है- 'शरीर माध्यम खलु धर्म' साधनम अर्थात् यह शरीर निश्चय ही धर्म का साधन है गोस्वामी जी लिखते है 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाईन जेहि परलोक संवारा' अर्थात् यह शरीर परम धाम बैकुंठ लोक जाने का साधन है। मोक्ष का द्वार है इस अमूल्य शरीर को पाकर के हमे अपना परलोक सुधारना चाहिए -"बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद ग्रंथन गावा, करन धार सद्गुरु दृढ नावा, दुर्लभ काज सुलभ करि मावाइन शास्त्र ग्रंथों में मानव तन की महिमा का वर्णन करते हुए महत्व बताया गया है इसे हम सांसारिक भोगों में नष्ट करके अनेक का शिकार बनते है एक आध्यात्मिक चिकित्सीय ग्रन्थ के रूप में श्रीमद्भागवत गीता का अध्ययन अति आवश्यक है जिसमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक व्याधियों का सफल चिकित्सीय समाधान संभव है। श्रीमद्भागवत गीता का यह योग विमर्श आज सम्पूर्ण मानव जाति के लिए संजीवनी औषधि है इस औषधि के बिना सम्पूर्ण विश्व मानव मानस क्षण मात्र के लिए भी शांति एवं आनंद का अनुभव नहीं कर सकता है। श्रीमद्भागवत गीता की एक एक पंक्ति हर पंक्ति का, एक एक शब्द, हर शब्द का एक एक अक्षर दिव्यज्ञान से युक्त है इसका अनुपालन करके हम आत्म कल्याण एवं विश्व कल्याण के भागी बन सकते है इस दृष्टि से भी श्रीमद्भागवत गीता का योग विमर्श अति आवश्यक है।

कूटशब्द -गीता, योग, धर्म, कर्म, ज्ञान, ध्यान, भक्ति, मन, बुद्धि, इंद्रिया

श्रीमद्भागवतगीता में योग

गीता भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों में से एक अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गीता की महत्ता इस बात से सिद्ध होती है कि लगभग सभी भाषाओं में गीता का अनुवाद हुआ है। गीता में सभी प्रकार की विद्याएँ विद्यमान हैं। गीता वह विद्या है जो आत्मा एवं ईश्वर मिलन के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का उल्लेख करती है। गीता का मुख्य उपदेश है-"योग", इसलिए गीता को एक योगशास्त्र कहा जाता है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि गीता के प्रत्येक अध्याय के नाम के साथ योग शब्द जुड़ा हुआ है तथा सभी विषयों के साथ गीता में योग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। योग की विभिन्न पद्धतियों का गीता में वर्णन किया गया है। किसी भी अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ की तुलना में गीता में "योग" "योगी" और "योग-युक्त" शब्द का वर्णन अत्यधिक है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में "इति श्रीमद्भागवतगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे" लिखा हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को ऐसा योगमुक्त जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना है जिससे इहलौकिक जीवन में मनुष्य सफल होने के साथ-साथ परमात्मा का भी सानिध्य प्राप्त कर सके।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित योग की परिभाषाएँ:

गीता में विभिन्न संदर्भों में योग की परिभाषाएँ दी गई हैं-

योगस्थः कुरु कर्माणि संगत्यक्त्वा धनन्जय।

सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (2/48)

अर्थात् हे धनन्जय ! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यसव योगः कर्मसु कौशलम् ॥ (2/50)

अर्थात्-समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जाय यह समत्व रूप योग ही कर्मों की कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योग संज्ञितम्।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ (6/23)

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चय पूर्वक करना कर्तव्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता की महत्ता:

गीता एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें दर्शनशास्त्र, धर्म और नीतिशास्त्र का एक अत्यन्त ही संतुलित समन्वय हुआ है। महाभारत युद्ध में युद्ध भूमि कुरुक्षेत्र में मोहग्रस्त कर्तव्य-विमुख अर्जुन को धर्म तथा नीति का मार्ग दिखाने तथा उसे कर्तव्य-परायणता का उपदेश देने के लिए परम कृपालु भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त ही योगयुक्त अन्तःकरण से गीता का उपदेश दिया। इस महान रचना का ऐसा दिव्य अलौकिक प्रकाश है जो युगां-युगों तक समस्त चराचर को आलोकित करता रहेगा।

भगवान श्री व्यास ने महाभारत में गीता के वर्णन के उपरान्त इसकी महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ॥ (महाभारत भीष्मपर्व 43/1)

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है अर्थात् श्रीगीता जी को भली प्रकार चढ़कर अर्थ और भाव सहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं पद्म नाम भगवान श्रीविष्णु के मुखारविन्द से निकली हुई है: (फिर) अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है?

श्रीमद्भगवद्गीता में योग साधना का स्थान

योग साधना हेतु शारीरिक एवं मानसिक स्थिति के साथ स्थान का अत्यधिक महत्व है। गीता में योगी के लिए साधना हेतु शारीरिक एवं मानसिक स्थिति एवं स्थान का वर्णन करते हुए कहा गया है-

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ (6/10)

मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ (6/11)

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके योगारम्भ करें।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ (6/13)

काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थित होकर, अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ योग करें।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग साधना के साधक-बाधक तत्वः

योग साधना के अभ्यास के समय साधना में विभिन्न प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न होने की संभावना रहती है। विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में योग साधना में आने वाली बाधाओं और उनके समाधान का वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में योग साधना के बाधक तत्वों का और उनके समाधान का वर्णन किया गया है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण सन्दर्भ इस प्रकार हैं-

इन्द्रियेन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ (3/34)

अर्थात्-इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिए क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले महान शत्रु हैं।

धूमेनात्रियते वहिहनर्यथादर्शो मलेन च ।

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ (3/38)

अर्थात् जिस प्रकार धूँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढक जाता है तथा जिस प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ (3/40)

इन्द्रियां, मन और बुद्धि-ये सब इसके वास स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा मोहित करता है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ (3/41)

हे अर्जुन सर्वप्रथम तू इन्द्रिय को वश में करके इस ज्ञान-विज्ञान का नाश करने वाले महान् पापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा। (6/17)

अर्थात्-दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

विभिन्न योग पद्धतियों का गीता में वर्णन

योग आत्मा के बंधन को समाप्त कर उसे ईश्वर से जोड़ने का एक माध्यम है। गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग को मोक्ष का प्रमुख मार्ग बताया गया है। कर्म, ज्ञान और भक्ति के अतिरिक्त गीता में ध्यान योग का वर्णन भी आता है, जो इस प्रकार हैं-

कर्मयोग

गीता में सत्य की प्राप्ति के लिए कर्म को करने का आदेश दिया गया है। व्यक्ति को कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, परंतु उसे कर्म के फलों की चिंता नहीं करनी चाहिए। मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह परिणामों के सम्बन्ध में चिंतनशील रहता है। यदि कर्म से अशुभ परिणाम पाने की आशंका रहती है तो वह कर्म का त्याग कर देता है इसलिए गीता में निष्काम कर्म करने का ही आदेश दिया गया है। निष्काम कर्म का अर्थ है, कर्म को बिना किसी फल की इच्छा से करना। जो कर्म फल की इच्छा को छोड़ देता है वही वास्तविक कर्मयोगी है। इसलिए भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भूमाते संगोडस्त्वकर्मणि ॥ (2/47)

अर्थात् कर्म में ही तेरा अधिकार हो फल में कभी नहीं, तुम कर्मफल का हेतु भी मत बनो तथा तुम्हारी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

व्यक्ति को अनासक्त होकर किसी भी कर्म परिणाम में सफलता प्राप्त हो या विफलता स्थिर रहना चाहिए। तथा उस हेतु मनःस्थिति बनी रहनी चाहिए। चाहे विलासिता हो या दीनता प्रसन्न भाव से दोनों में ही समान रहते हुए अपने कर्तव्य का निर्वहन किया जाना चाहिए। मानव का केवल कर्म में ही अधिकार है न कि उनसे प्राप्त फलों में। यह आवश्यक नहीं कि अपेक्षित फल प्राप्त हो ही जाए। यदि व्यक्ति फल के प्रति आसक्त हुए बगैर कर्म करेगा तो फल चाहे जो भी हो वह निराश हताश न होगा तथा भव-बन्धनों में जकड़ेगा नहीं। आसक्ति ही दुःख का कारण है। प्राणी मात्र के लिए कर्म करना अनिवार्य है उसके बिना जीवन की कल्पना व्यर्थ है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ (3/5)

अर्थात् निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। व्यक्ति को कदापि कर्मों से उपजे परिणाम चाहे वे कितने ही अच्छे या बुरे क्यों न हो,

चिंता किये बगैर नियत कर्म को अपनी पूर्ण कार्य क्षमता का प्रयोग करते हुए सम्पादित करना चाहिए। क्योंकि यदि व्यक्ति परिणाम के संबंध में आशंकित अथवा चिन्तित रहेगा तो वह पूर्ण मन से उसमें तन्मय नहीं हो पायेगा।

सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमासुमयोगतः ।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ (5/6)

अर्थात् कर्मयोग के बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत् स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

कर्मयोग की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है-

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावभौ ।

तयोस्तु कर्मसन्यासात्मकर्मयोगो विशिष्यते ॥ (5/2)

अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण बोले-कर्मसन्यास और कर्मयोग-ये दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं, परन्तु उन दोनों में भी कर्मसन्यास से कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है।

ज्ञेयः स नित्य सन्यासी यो न द्वेष्टि न काड, क्षति।

निर्द्वन्द्वो ही महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ (5/3)

अर्थात् जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है क्योंकि राग-द्वेष आदि इंडों से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार बंधन से मुक्त हो जाता है।

ज्ञानयोग

गीता के अनुसार मनुष्य अज्ञानतावश मोह बंधन में बंध जाता है। अज्ञानता का अंत ज्ञान से होता है। इसीलिए गीता में मोक्ष को अपनाने के लिए ज्ञान की महिमा तथा महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। गीता में दो प्रकार के ज्ञान का वर्णन है-ताकिक ज्ञान एवं आध्यात्मिक ज्ञान। तार्किक ज्ञान अर्थात् वस्तुओं के बाहरी रूप को देखकर उसके स्वरूप की चर्चा बुद्धि के द्वारा करना। आध्यात्मिक ज्ञान वस्तुओं के आभास में व्याप्त सत्यता का करना। आध्यात्मिक ज्ञान वस्तुओं के आभास में व्याप्त सत्यता का निरूपण करने का प्रयास करना है। गीता में सांख्ययोग के रूप में ज्ञानयोग को प्रतिपादित किया गया है। गीता में ज्ञानयोग को मुख्यतः दो तरह से प्रदर्शित किया गया है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (6/29)

अर्थात्-“सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकी भाव से स्थितरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।“ प्रथम तो वह सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है। जिसमें सर्वभूत आधार और आत्मा आधेय है। द्वितीय इसका पूरक है आत्मा में सर्वभूतों को देखता है। इसमें आधारभूत आत्मा में आधेयभूत सर्वभूतों का अनुभव करना है। अर्थात् अपनी ही आत्मा के समान

सभी भूतों की आत्मा को मानना। ज्ञानयोग की महत्ता बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि ज्ञान से कर्मों की अपवित्रता का नाश होता है और व्यक्ति सदा के लिए ईश्वरमय हो जाता है। ज्ञानयोग की महत्ता से सम्बन्धित सन्दर्भों का वर्णन इस प्रकार है-

यथैधांसि समिद्धौऽग्निर्भस्मसात्कुरुते ऽर्जुन ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ (4/37)

अर्थात् हे अर्जुन! जैसे प्रदीप्त अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देता है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।

न हि ज्ञानेने सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ (4/38)

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्म योग के द्वारा शुद्धअंतःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (4/39)

अर्थात् जितेन्द्रिय, साधनापरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलंब के तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम् शांति को प्राप्त हो जाता है।

सर्वकर्माणि मनसा सन्यस्यास्ते सुखं वशी ।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ (5/13)

अर्थात् अंतःकरण जिसके वश में है ऐसे सांख्ययोग का आचरण करने वाला पुरुष ना करता हुआ और न ही करवाता हुआ नवद्वारों वाले शरीररूप घर में सब कर्मों को मन से त्याग कर सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ (4/33)

अर्थात् हे परंतप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है तथा भावनामात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान यज्ञ अर्थात् ज्ञानयोग भी क्रियाजन्य है। परन्तु इसमें विवेक-विचार की प्रधानता होती है। अंतःकरण के त्रिदोषों-मल (संचित पाप) विक्षेप (चंचलता) और आवरण (अज्ञान) होते हैं। मल-विक्षेप परमार्थिक कर्मों से मिट जाते हैं, तत्पश्चात् आवरण (अज्ञान) को ज्ञान प्राप्ति से समाप्त किया जाता है। सम्पूर्ण कर्मों और पदार्थों की तत्त्वज्ञान में समाप्ति होती है।

भक्तियोग

भक्तियोग मानव मन के विचारों, संवेदनाओं तथा संवैज्ञात्मक पक्ष को पुष्ट करता है। भक्ति के स्वरूप का वर्णन करना अकथनीय है। जिस प्रकार एक गूँगा व्यक्ति मीठे के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भक्त अपनी भक्ति का व्याख्या शब्दों के द्वारा नहीं कर सकता। इन मार्ग को अपनाने के लिए भक्त में नम्रता का रहना आवश्यक है। उसे यह समझना चाहिए कि ईश्वर के सम्मुख वह कुछ नहीं है।

गीता में भक्तियोग का विशेष वर्णन मिलता है। क्योंकि अर्जुन स्वयं भगवान के भक्त थे तो उन्हें इस माध्यम से समझाया जाना उचित प्रतीत हुआ। भगवान ने उसे प्रायः भक्ति प्रधान कर्मयोग का ही उपदेश दिया है।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतसा ।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ (3/30)

अर्थात् मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके आशरहित, ममतारहित होकर युद्ध करा भक्ति से भक्त का अहंकार समाप्त हो जाता है। समर्पण भाव विकसित होने से उसकी सारी चिन्तायें ईश्वर की चिन्ता हो जाती है। तथा वह स्वयं चिन्तामुक्त हो जाता है। भगवान ने अपने भक्तों को चार वर्गों में इस प्रकार विभाजित किया है-

चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरथार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ (7/16)

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म करने वाले अथार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं। भक्तियोग की महत्ता बतलाते हुए गीता में कहा गया है मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्त में मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भक्तियोग की महत्ता से सम्बन्धित सन्दर्भों का वर्णन इस प्रकार है-

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ (7/23)

अर्थात् उन अल्पबुद्धि वालों का फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्त में मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भक्ता त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ (11/54)

अर्थात् परन्तु हे अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये, तत्व से जानने के लिये तथा प्रवेश करने के लिये अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिये भी शक्य हूँ।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः मामेति पाण्डव ॥ (11/55)

अर्थात् हे अर्जुन ! जे पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण, मेरा भक्त, आसक्ति रहित है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैर भाव से रहित है, वह अनन्य भक्ति युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

मन्मना मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रमिजाने प्रियोऽसि मे ॥ (18/65)

अर्थात् हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझ को प्रणाम करा। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। गीता में भक्तियोग का बहुत ही सरल ढंग से परन्तु गुह्य विवेचन किया है।

इसमें सकाम तथा निष्काम उपासना के भेद को मानकर निष्काम उपासना को श्रेष्ठ माना है। गीता, सगुण उपासना का उपदेश देती है। इस प्रकार गीता में भक्ति का लक्ष्य, प्रकार, भक्तन् के प्रकार, भक्त के प्रकार भक्त की भावना तथा अन्तिम अवस्था अर्थात् जीवात्मा परमात्मा के मिलन का वर्णन करते हुए भक्तियोग को सहज बनाया गया है।

ध्यानयोग-

गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के अतिरिक्त ध्यान से सम्बन्धित श्लोकों का वर्णन भी आता है। गीता में ध्यान के सन्दर्भ में बहुत ही सरल ढंग से विवेचन किया गया है। ध्यानयोग एवं उसकी महत्ता से सम्बन्धित सन्दर्भों का वर्णन इस प्रकार है-

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य युज्जतो योगमात्मनः ॥ (6/19)

अर्थात् जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के चित्त की कही गयी है।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

यत्र चौवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ (6/20)

अर्थात् योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त जिस अवस्था में उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्द परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चौवायं स्थितश्चलति तत्ततः ॥ (6/21)

अर्थात् इन्द्रियों से अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी परमात्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं।

यं लब्धा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ (6/22)

अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मा प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता।

प्रशान्तमनसं होनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ (6/27)

अर्थात् क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्द ब्रह्म के एकीभाव हुए योगी उत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित योगाभ्यास का फल:

योग के अभ्यास से साधक के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका स्पष्ट वर्णन गीता में बहुत ही सरल ढंग से विवेचन किया है। गीता में यह बताया गया है कि जब साधक अपने चित्त को

विभिन्न यौगिक तकनीकों से निर्मल कर लेता है तो उसकी क्या स्थिति होती है। हम गीता में वर्णित योगाभ्यास के फल सं सम्बन्धित सन्दर्भों को इस प्रकार समझ सकते हैं-

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (2/68)

अर्थात् जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममतारहित, अहंकार रहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है अर्थात् वह शांति को प्राप्त होता है।

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्र प्रविलीयते ॥ (4/23)

अर्थात् जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गई हो। जो देह अभिमान एवं ममता से रहित हो गया है। जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित है। ऐसा केवल यज्ञ संपादन के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भलीभांति विलीन हो जाते हैं।

शन्कोतीहेव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।

कामक्राधोद्धवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ (5/23)

अर्थात् जो साधक इस शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले-पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और सुखी है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ (6/8)

अर्थात् जिसका अंतःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकार रहित है, जिसकी इन्द्रियां भलीभांति जीता हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि गीता योग का एक ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो सम्पूर्ण मानव जाति को कर्म, ज्ञान और भक्ति का मार्ग मोक्ष मार्ग के लिये प्रस्तुत करता गीता में सबसे अधिक प्रधानता निष्काम कर्मयोग को दी गयी है और योग की सबसे श्रेष्ठ व्याख्या "योगः कर्मसुकौशलम्" बताई गयी है। गीता के अन्तर्गत वर्णित अध्यायों में वेदों का सार संग्रह है परन्तु इसकी वर्णन की भाषा व शैली इतनी सरल व्यावहारिक है कि कोई भी व्यक्ति समझ सकता है। अपने कल्याण का भाव रखने वाले व्यक्ति के लिये यह एक अनुपम ग्रन्थ है।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, एम. एम., (2009), श्रीमद्भागवद्गीता गूढार्थ दीपिका, टिप्पणी सहित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-123.
- अग्रवाल, एम. एल. (2023). महाकविकालिदास विरचित मंकुमारसंभवम् महाकाव्यम्, ओरिजनल ब्लेक क्लासिक्स, पृष्ठ संख्या-331.

- कौशिक, ए. (1994), श्रीमदभगवद्गीता (संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी), स्टार पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, असफ अली रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-34-751.
- क्रियानन्द, एस. (2011), भगवद्गीता का सार आनन्द सथ प्रकाशन पृष्ठ संख्या-011.
- गोयन्दका, जी. . (2015), श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी, बृहदाकार गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-5.
- गोयन्दका, एच. डी., (2022), श्रीमद्भगवद्गीता (शंकरभाष्य हिन्दी अनुवादसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 65.
- गांधी, एम. के., (2014). अनाशक्ति योग (श्रीमद्भगवद्गीता, अनुवाद सहित), कर्मयोग, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-40.
- गीताप्रेस गोरखपुर, (2016), श्रीमद्भगवद्गीता महापुराण, सातवा-खण्ड गीताप्रेस, 75ध231.
- गुलाबचन्द, (2017), महाभारत में प्रतिपादित कर्म, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी: 3(7), 1088-1094.
- घोष, एस. ए. . (2011), गीता पर निबंध (एसेज ऑन गीता), भारतीय कला प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-94.
- तिलक, एल. बी. जी. . (2021), श्रीमदभगवद्गीता: गीता रहस्य (श्रीमद्भगवद्गीता पर लोकमान्य तिलक की टीका), सन शाइन बुक्स, पृष्ठ संख्या-89.
- भावे. वी. (2010), गीता-प्रवचन, सर्व सेवा संप्रकाशन पृष्ठ-100.
- भारद्वाज, के, (2017). गीता में कर्मयोग की वर्तमान जीवन में प्रासंगिकता, अनहद कृति, 16(8).
- मंजुषा, डी, (2019), वैश्विक परिदृश्य में गीता का मूल्य, जर्नल ऑफ एडवान्सेस एंड स्कॉलरली.
- मल्हान, ए. आर्य, एस., रानी, आर, मिश्र, आर. (2019), वेदान्त साधना की बदसंगीत का भानव जीवन में महत्व, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इप सोशल साइंसेस ७६), 1079-10841.
- योगानन्द, एस. एस. पी. (2017), ईश्वर-अर्जुन संवाद श्रीमदभगवद्गीता (आत्म-साक्षात्कार का राजयोग विज्ञान), कर्मयोग आध्यात्मिक कर्म का मार्ग, योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या-3751.
- रावत, अनुजा (2016), योग और योगी. नई दिल्ली उत्तम: सत्यम पब्लिशिंग हाउस मोहन गार्डन पृष्ठ संख्या-38-49.
- रामसुखदास, एस., (2014) श्रीमदभगवद्गीता हिन्दी-टीका, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-249.
- लाहिड़ी महाशय, एस. वाय., श्रीधर, एस., और सान्याल, बी., (2013), श्रीमदभगवद्गीता प्रथम खण्ड: योगिराज श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की आध्यात्मिक दीपिका, द संस्कृत क्लासिकमर पृष्ठ संख्या-32.

- वेदव्यास, एम., (2005), श्रीमद्भगवद्गीता, भारतीय साहित्य संग्रह प्रकाशक, पृष्ठ संख्या-9.
- शंकराचार्य, (2013), श्रीमद्भगवद्गीता शंकर भाष्य या गीताभाष्य गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-311.
- श्रीधराचार्य, (2007), श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीधराचार्यकृत 'श्रीपरी (सुबोधिनी) व्याख्यासहिता), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-96.